International Journal of Applied and Universal Research **E- ISSN No: 2395-0269**
Volume V, Issue III, October 2018 Available online at: www.ijaur.com

"महापुरुषों के चरित्र पर माँ की साधना एवं शिक्षा का प्रभाव"

डॉ. रमेश प्रसाद पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र
श्रीयुत महाविद्यालय, गंगेव, रीवा (म.प्र.)

सारांश– भारतीय संस्कृति में चरित्र को सर्वोच्च महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। बालक के चरित्र–निर्माण में माता, पिता, गुरु, शिक्षक, मित्रमण्डली, पढ़ी जाने वाले पुस्तकें, पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश आदि सभी का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता है। गर्भाधान से ही मनुष्य के चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। हमारी संस्कृति में ऐसी व्यवस्था की गयी है कि यदि पथ–प्रदर्शक माता, पिता, गुरु, आचार्य उच्चकोटि के चरित्रवान, मिल जायँ तो मनुष्य अपना चरम उत्कर्ष–साधन कर सकता है। इनमें से भी चरित्र–निर्माण में माता की भूमिका भित्ति–स्थानीय है और चरित्र पर माता के शील, व्यवहार एवं शिक्षा की अमिट छाप पड़ना अनिवार्य है।

मुख्य शब्द – चरित्र, माता के शील, व्यवहार एवं शिक्षा ।

प्रस्तावना–

भारतीय ऋषियों ने मानव के अवचेतन मन के क्षेत्र का ज्ञान अति प्राचीनकाल में प्राप्त कर लिया था, जिसका पूर्ण ज्ञान पाश्चात्य मनोविज्ञान को अभी तक प्राप्त नहीं है। अवचेतन–मनोविज्ञान के द्वारा किये गये अन्वेषणों के बहुत पहले ऋषियों को यह ज्ञान प्राप्त हो गया था कि मनुष्य की समस्त क्रियाओं, विचारों तथा उद्वेगों आदि का कारण उसकी अवचेतन–अवस्थाएँ हैं। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार इस आवचेतन को बनाने वाले घटक 'संस्कार' है, जिन्हें अवचेतन मनोविज्ञान ससेचन, कामप्रसुप्ति, अवशेष आदि बातों से जानता है। भारतीय मनोविज्ञान में इन संस्कारों का आधुनिक मनोविज्ञान के समान केवल ज्ञान के लिये अन्वेषण नहीं किया गया ; अपितु उनके ऊपर पूर्णरूप से नियन्त्रण स्थापित करने की प्रक्रिया का भी ज्ञान प्राप्त किया गया है।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार संस्कार–सिद्धान्त शिक्षा का मूलाधार है। संस्कारों के आधार पर ही शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। अधिगम की सम्पूर्ण क्रिया इस संस्कार–सिद्धान्त पर ही आधारित है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने चूहों और कुत्तों पर प्रयोग करके अधिगम के विभिन्न सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। भारतीय मनोविज्ञान में अधिगम के समस्त सिद्धांत इन संस्कार–सिद्धांतों के आधार पर सहस्रों वर्ष पूर्व सफलतापूर्वक प्रयुक्त किये जा चुके हैं।

वास्तव में शिक्षा संस्कार–प्रक्रिया है। आधुनिक शिक्षा–प्रणाली में संस्कार–सिद्धान्त की घोर उपेक्षा की जा रही है। परिणामतः शिक्षा निष्फल हो रही है। अतः शिक्षा का आधार संस्कार–सिद्धान्त को बनाने की आवश्यकता है। ज्ञान के उपार्जन और बुद्धि के विकास में ही नहीं, बालकों के नैतिक चरित्र एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के निर्माण में भी संस्कारों का बहुत महत्व होता है। आक्सफोर्ड के जर्मन प्राध्यापक मैक्समूलर ने कहा था–'श्री रामकृष्ण एवं मौलिक विचारक थे; क्योंकि उनकी शिक्षा–दीक्षा किसी विश्वविद्यालय की परिधि में नहीं हुई थी।' फ्रांस के सुप्रसिद्ध नोबल पुरस्कार–विजेता मोशियो रोमॉ रोलॉने उन्हें नरदेव और 'विश्वात्मा की अनुपम संगीत रचना' के रूप में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार विश्व के अनुक देशों के हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी विद्वानों, मनीषियों एवं विचारकों ने श्रीरामकृष्ण के अनुपम व्यक्तित्व के प्रति तीव्र आकर्षण का अनुभव किया है।

यह सोचकर बड़ा ही विस्मय होता है कि कैसे भारत के एक सुदूर गाँव में जन्मा एक निर्धन एवं अशिक्षित व्यक्ति विश्वभर के इतने सारे प्रतिभावान् लोगों का श्रद्धाभाजन एवं प्रेरणा का केन्द्रबिन्दु बन सकता है, परंतु थोड़ा–सा विचार करने पर ही इसका कारण स्पष्ट समझ में आ जाता है। श्री रामकृष्ण ने अपनी साधना में वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लिया और साक्षात्कार किये बिना किसी भी बात को सत्य नहीं माना। अनुभूति पर आधारित होने के कारण ही उनकी उक्तियाँ इतनी अपील करती हैं। महात्मा गाँधी लिखते हैं–'उनका जीवन हमें ईश्वर को प्रत्यक्ष–रूप से देखने में समर्थ बनाता है। उनकी उक्तियाँ एक पण्डित के विचार मात्र नहीं, अपितु उनके जीवनग्रन्थ के पृष्ठ हैं। वे उनकी अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्तियाँ हैं।

आक्सफोर्ड के जर्मन प्राध्यापक मैक्समूलर ने कहा था–'श्री रामकृष्ण एवं मौलिक विचारक थे; क्योंकि उनकी शिक्षा–दीक्षा किसी विश्वविद्यालय की परिधि में नहीं हुई थी।' फ्रांस के सुप्रसिद्ध नोबल पुरस्कार–विजेता मोशियो रोमॉ रोलॉने उन्हें नरदेव और 'विश्वात्मा की अनुपम संगीत रचना' के रूप में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार विश्व के अनुक देशों के हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी विद्वानों, मनीषियों एवं

विचारकों ने श्रीरामकृष्ण के अनुपम व्यक्तित्व के प्रति तीव्र आकर्षण का अनुभव किया है।

यह सोचकर बड़ा ही विस्मय होता है कि कैसे भारत के एक सुदूर गाँव में जन्मा एक निर्धन एवं अशिक्षित व्यक्ति विश्वभर के इतने सारे प्रतिभावान् लोगों का श्रद्धाभाजन एवं प्रेरणा का केन्द्रबिन्दु बन सकता है, परंतु थोड़ा–सा विचार करने पर ही इसका कारण स्पष्ट समझ में आ जाता है। श्री रामकृष्ण ने अपनी साधना में वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लिया और साक्षात्कार किये बिना किसी भी बात को सत्य नहीं माना। अनुभूति पर आधारित होने के कारण ही उनकी उक्तियाँ इतनी अपील करती हैं। महात्मा गाँधी लिखते हैं–'उनका जीवन हमें ईश्वर को प्रत्यक्ष–रूप से देखने में समर्थ बनाता है। उनकी उक्तियाँ एक पण्डित के विचार मात्र नहीं, अपितु उनके जीवनग्रन्थ के पृष्ठ हैं। वे उनकी अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्तियाँ हैं।'

विश्लेषण –

आधुनिक युग के महापुरुषों के चरित्र पर भी माँ की साधना एवं शिक्षा का विशेष प्रभाव परिलक्षित हुआ है। परमहंस देव रामकृष्ण की माता चन्द्रमणि देवी अत्यन्त धर्मनिष्ठ, सरल–स्वभाव एवं पतिव्रता महिला थीं। एक बार उन्हें शारदीय पूर्णिमा के दिना श्री लक्ष्मीदेवी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। परमहंसदेव के आविर्भाव से ठीक पूर्व उन्हें भगवान् शिव की दिव्य ज्योति के एवं गया तीर्थ के अधिष्ठातृ–देवता गदाधन विष्णु के नाना रूप का दिव्य दर्शन हुआ करते थे। इसीलिये उनका जन्म–नाम भी गदाधर ही रखा गया था। वह जैसी ऋजुस्वभावा, धर्मशीला, भक्तिमती महिला थी, एवं जैसा सात्विक उनका आहार–विहार था, उन्हें वैसा ही धर्मप्राण, सरल, भक्तिमान, संसार को ईश्वर प्राप्ति का सही मार्ग–प्रदर्शन करने वाला पुत्र रामकृष्ण के रूप में प्राप्त हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द के नाम से सुदूर विदेशों में हिंदू धर्म की विजय पताका फहराने वाले नरेन्द्र दत्त की माँ श्रीमती भुवनेश्वरी देवी प्राचीनपंथी, धर्मपरायणा एवं अत्यन्त तेजस्विनी महिला थीं। वे प्रतिदिन स्वहस्त से शिवपूजा किया करती थीं। पुत्र–कामना से उन्होंने काशीवासी जनैक–आत्मीया महिला को पत्र लिखकर श्री विश्वनाथ की पूजा एवं होमादिकी व्यवस्था की थी। फलस्वरूप उन्हें स्वप्न में तुषार–धवल रजत भूधरकान्ति श्रीविश्वेश्वर के दर्शन हुए थे और वरदान मिला था। नरेन्द्र का जन्मनाम भी इसीलिये वीरेश्वर (संक्षेप में 'विले') रखा गया था। बालक नरेन्द्र बाल्यकाल में अत्यन्त स्वेच्छाचारी और उद्दण्ड थे, किन्तु उन्हें शान्त करने का माँ ने एक अद्भुत उपाय आविष्कार किया और वह सफल भी हुआ था। 'शिव, शिव' कहकर मस्तक पर थोड़ा–सा जल छिड़कते ही उद्दण्ड नरेन्द्र मन्त्रमुग्ध की भाँति शान्त हो जाते थे। बालक का जन्म शिवांश से है, यह दृढ़ विश्वास होते हुए भी बुद्धिमती माँ ने इसे कभी प्रकट नहीं किया। केवल एक बार नरेन्द्र के औद्धत्य से समधिक क्षुब्ध होकर वे बोल उठी थीं–'महादेव ने स्वयं न आकर कहाँ से एक भूत को पकड़कर भेज दिया है।'

माँ के मुख से रामायण एवं महाभारत के उपाख्यान सुनने के लिये नरेन्द्र अत्यन्त आग्रहान्वित रहते। माँ भी प्रतिदिन मध्यान्हकाल में उन्हें रामायण एवं महाभारत सुनातीं। अतीत युग के धर्मवीरों के पावन चरित्र सुनकर उनके कोमल मन पर विशेष प्रभाव होता और उनका शिशुमन न जाने किन भावतरंगों से आन्दोलित होता रहता कि वे अपनी स्वभाव सुलभ चंचलता का परित्याग करके घंटों तक मन्त्रमुग्ध होकर शान्त बैठे रहते। कभी–कभी माँ का अनुकरण करके बालक नरेन्द्र भी चक्षु मुद्रित करके ध्यान में बैठ जाते और उन्हें अविलम्ब बाह्य जगत् की विस्मृति हो जाती थी। यह एक अद्भुत बात थी। उनके चरित्र पर माँ की साधना एवं शिक्षा की अमिट एवं स्पष्ट छाप विद्यमान थी। परमहंस देव और स्वामी विवेकानन्द में स्त्री मात्र के लिये मातृभावना इस प्रकार दृढ़ थी कि कोई भी प्रलोभन उन्हें इस भावना से विचलित नहीं कर सका था।

छत्रपति शिवाजी को अत्याचारी मुसलमानों के विरुद्ध कमर कसने के लिए माँ जीजाबाई की प्रेरणा एवं शिक्षा ही मुख्य कारण थी। स्त्री मात्र में उनका मातृभाव इतना दृढ़मूल था कि अनेक प्रसंगों पर सुन्दर युवती स्त्रियों के उनके एकान्त अधिकार में आ जाने पर भी उन्होंने उन्हें अपने मुसलमान पतियों के पास ससम्मान वापस पहुँचाया।

इसी प्रकार के अनगिनत पौराणिक एवं ऐतिहासिक दृष्टान्त हमारे दैशिक शास्त्र के इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं कि चरित्र–निर्माण की प्रथम एवं प्रधान शिल्पी माता ही है। भारत को अपने अतीत गौरव के समुन्नत शिखर पर पुनः आरूढ़ कराने के लिये हमें उच्च–चरित्र सम्पन्न नागरिकों की आवश्यकता है।

निष्कर्ष–

शिक्षा का सम्बन्ध संस्कारों, साधनों और विधाओं से है। संस्कार तो व्यक्तिगत होते हैं, पर विद्या और साधना को अपेक्षित दिशा और भूमिका देनी पड़ती है। विद्या के लिये साधना और साधना के लिये विद्या, इन दोनों ही वस्तुओं को

तत्व से जानने की आवश्यकता है। विद्या–प्राप्ति का उद्देश्य विवाद, धन–मद और अहंकार–वर्धन नहीं होना चाहिये। विद्या से विनय की ही प्राप्ति होनी चाहिये।' हम इस समस्या की गहराई में पहुँचने का प्रयास ही नहीं करते और सरलता से इस प्रश्न को देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से जोड़ देते हैं। कुछ हमारी शिक्षा–पद्धति को दोष देते हैं। शिक्षा में सुधार के प्रयास भी हुए, परंतु समस्या का समाधान बाह्य परिवेश में परिवर्तन लाने में खोजते हैं। परिणामतः सभी प्रयास विफल होते जा रहे हैं।

संदर्भ –

1. भारत में नारी शिक्षा, जे.सी. अग्रवाल, वर्ष 2009
2. शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, पाठक एवं त्यागी, वर्ष 2010
3. द वर्ल्ड क्राइसिस इन एजूकेशन, फिलिप एच कोपन्स, वर्ष 2010
4. ओलिव बैक्स–दि सोसियोलाजी आफ एजुकेशन, न्यूयार्क, वर्ष 2008
5. महादेव प्रसाद – महात्मा गांधी का समाज दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी प्रकाशन चण्डीगढ़।
6. अनुसंधान परिचय, पारस नाथराम, वर्ष 2009
7. शिक्षा सेवा विनय और शील, पृष्ठ 86, प्रो. अनन्त.